एम/एस वी.एल.एस.फाइनेंस लिमिटेड

बनाम

एस.पी.गुप्ता और अन्य

(आपराधिक अपील संख्या 99/2016)

फरवरी 05,2016

[दीपक मिश्रा और एन. वी. रमना, न्यायाधिपति]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1993-एसएस 91 और 321- आवेदन अंतर्गत धारा 321 - वापस लेना/दबाव न बनाना - आरोपियों द्वारा चुनौती -अनुज्ञेय - ठहराया : आवेदन 321 दायर किया गया था और अदालत के समक्ष पेश नहीं किया गया था - अदालत की सहमति देने में कोई भूमिका नहीं है, जब तक कि आवेदन लोक अभियोजक द्वारा आगे बढ़ाया नहीं जाता है - इस स्तर पर लोक अभियोजक को धारा 321 के तहत आवेदन वापस लेने का अधिकार है- अभियुक्त व्यक्तियों को इस तरह के आवेदन को चुनौती देने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और न ही दस्तावेज़ दाखिल किया जा सकता है और न ही एस. 91 का आश्रय ले सकते हैं।

न्याय प्रशासन-न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग-ठहराया: कानून की अदालत में कार्यवाही को विलंबित करने के लिए प्रत्येक आदेश को वरिष्ठ न्यायालय में चुनौती देकर कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

अपीलों को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया-

1.1 समन जारी होने के दिन से काफी समय बीत चुका है। वरिष्ठ न्यायालयों द्वारा समन जारी करने के आदेश को चुनौती देने वाली याचिकाओं पर विचार न किए जाने के बावजूद, मामला अब वहीं बना हुआ है, जहां यह वर्ष 2003 में था। [अनुच्छेद 27] [636 - जी-एच]

1.2 तथ्यात्मक वर्णन एक दुखद और साथ ही उलझन भरा दिखता है। इस प्रकार की मुकदमेबाजी स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि कुछ ऐसे लोग हैं जो अदालत में कार्यवाही को इस आधार पर टालने के लिए अड़ियल रवैया रखते हैं कि प्रत्येक आदेश पर आघात किया जा सकता है और प्रत्येक कदम को वरिष्ठ अदालतों के समक्ष चुनौती दी जा सकती है। यह नहीं समझा जाना चाहिए कि किसी वादी को कानून में आदेशों को चुनौती देने का अधिकार नहीं है, लेकिन कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। वर्तमान मामले में निश्चित रूप से प्रक्रिया का दुरुपयोग किया गया है। [अनुच्छेद 31] [638-डी-ई]

सुब्रत रॉय सहारा बनाम भारत संघ और अन्य (2014) 8 एस. सी. सी. 470-पर निर्भर।

2.1 . जब धारा 321 सीआरपीसी के तहत अभियोजन से वापसी का आवेदन लोक अभियोजक द्वारा दायर किया गया है, उसकी एकमात्र जिम्मेदारी है और कानून दायित्व डालता है कि उसे कुछ कानूनी मापदंडों को ध्यान में रखते हुए रिकॉर्ड पर तत्वों के आधार पर संतुष्ट होना चाहिए।

जैसा कि आवेदन से पता चलता है, लोक अभियोजक ने संतुष्ट होकर आवेदन दायर किया था। उक्त आवेदन पर सुनवाई नहीं की गयी। मजिस्ट्रेट ने वापसी के लिए सहमति देने वाला कोई आदेश पारित नहीं किया था, क्योंकि वह सहायक लोक अभियोजक को सुने बिना ऐसा नहीं कर सकता था। इस समय, प्राधिकारी ने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए निर्णय लिया कि सहायक लोक अभियोजक को आवेदन वापस ले लेना चाहिए और उस पर दबाव नहीं डालना चाहिए। इस तरह का निर्णय लेने के बाद, जैसा कि आवेदन से पता चलता है, सहायक लोक अभियोजक ने तथ्यों की फिर से सराहना की है, तथ्यों की समग्रता पर अपना विवेक लगाया है और धारा 321 सीआरपीसी के तहत पहले दिए गए आवेदन पर दबाव न डालने के लिए आवेदन दायर किया है। आवेदन पर दबाव न डालने के लिए आवेदन दाखिल करने की तुलना न्यायालय द्वारा पारित आदेश की किसी भी प्रकार की समीक्षा से नहीं की जा सकती। समीक्षा का प्रश्न तब उठ सकता है जब किसी न्यायालय द्वारा कोई आदेश पारित किया गया हो। धारा 362 सीआरपीसी के अंतर्गत जब न्यायालय किसी मामले के निपटारे के फैसले या अंतिम आदेश पर हस्ताक्षर कर चुका हो तो उसे लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को सुधारने के अलावा उसमें बदलाव करने या समीक्षा करने से रोकता है। उक्त प्रावधान को दूर से भी आकर्षित नहीं किया जा सकता है। अभियोजन से वापसी की मांग के लिए आवेदन दाखिल करना और पहले दायर किए गए आवेदन पर दबाव न डालने के लिए आवेदन दोनों लोक अभियोजक के अधिकार क्षेत्र में हैं। उसे

संतुष्ट होना चाहिए। उसे निश्चित रूप से स्वतंत्र रूप से काम करना होगा क्योंकि वह डाकघर नहीं है। [अनुच्छेद 47] [648-एफ-एच; 649-ए-सी]

2.2 वर्तमान मामले में, लोक अभियोजक ने सीआरपीसी की धारा 321 के तहत आवेदन आगे नहीं बढ़ाया था लेकिन केवल दायर किया गया। वह अदालत के समक्ष मौखिक रूप से प्रार्थना कर सकता था कि उसका आवेदन पर दबाव डालने का इरादा नहीं था। अदालत उसे सहमति प्राप्त करने में सहायता करने के लिए बाध्य नहीं कर सकती थी। जब लोक अभियोजक अभियोजन से हटने के लिए सहमति मांगने के लिए आवेदन दायर करता है तो अदालत की भूमिका होती है। उस स्तर पर, अदालत को यह देखना होगा कि क्या विवेक का स्वतंत्र अनुप्रयोग लोक अभियोजक द्वारा और क्या अन्य तत्व सहमति देने के लिए संतुष्ट हैं। लोक अभियोजक द्वारा आवेदन दायर किए जाने से पहले, अदालत की कोई भूमिका नहीं होती है। यदि लोक अभियोजक आवेदन को वापस लेने या न लेने का इरादा रखता है, तो वह ऐसा करने का हकदार है। अदालत यह नहीं कह सकती कि पहले के आवेदन पर दबाव न डालने के कारण लोक अभियोजक के पास आवेदन दायर करने का कोई कानूनी अधिकार नहीं है। (अनुच्छेद 47] [649-सी-एफ]

2.3 आरोपी व्यक्ति आवेदन का विरोध नहीं कर सकते हैं और दस्तावेज़ भी दाखिल नहीं कर सकते हैं और सीआरपीसी की धारा 91 का सहारा नहीं ले सकते हैं। आरोपी व्यक्तियों को जिस प्रकार की स्वतंत्रता दी

गई है, वह दंड प्रक्रिया संहिता के बिल्कुल अनुरूप नहीं है। ऐसी स्थिति में अगर कोई व्यथित है तो वह पीड़ित है, उसकी एफआईआर पर आरोपियों के खिलाफ कायम किए गए मुकदमे को वापस लेने की मांग की गई है। आरोपी व्यक्तियों की कोई भूमिका नहीं है और इसलिए, उच्च न्यायालय अभियोजन पक्ष को आवेदन वापस लेने की अनुमति देने और आरोपी व्यक्तियों को ऐसी स्वतंत्रता देने के आदेश को रद्द नहीं कर सकता था। सिद्धांत यह कहता है कि लोक अभियोजक को अपना विवेक लगाना चाहिए और धारा 321 सीआरपीसी के तहत आवेदन दायर करने के बारे में स्वतंत्र निर्णय लेना चाहिए दोष नहीं दिया जा सकता है, लेकिन उक्त सिद्धांत को आगे बढ़ाते हुए यह कहना कि उसे अदालत को यह विश्वास दिलाना है कि उसने पहले आवेदन पर दबाव न डालने के लिए एक आवेदन दायर किया है, उचित नहीं होगा। मजिस्ट्रेट को कानून के अनुसार मामलों को आगे बढ़ाने का निर्देश दिया गया है। [अनुच्छेद 47] [649-एफ-एच; 650-ए-बी]

2.4. वर्तमान मामले में मजिस्ट्रेट को उच्च न्यायालय द्वारा सहायक लोक अभियोजक द्वारा दायर आवेदन पर विचार करने का निर्देश दिया गया था, जिसमें सीआरपीसी की धारा 321 के तहत पहले दिए गए आवेदन को वापस लेने की मांग की गई थी। ऐसी स्थिति में सीआरपीसी की धारा 91 के तहत आरोपी व्यक्तियों द्वारा सहायता नहीं ली जा सकती थी। उच्च न्यायालय ने आरोपी व्यक्तियों को सीआरपीसी की धारा 91 के

तहत आवेदन दायर करने की अनुमति देकर गलती की है। [अनुच्छेद 45] [647-जी-एच]

शियोनंदन पासवान बनाम बिहार राज्य और अन्य (1987) 1 एस. सी. सी. 288- का अनुसरण।

अदालत प्रसाद बनाम रूपलाल जिंदल और अन्य (2004) 7 एस. सी. सी.; पटेल नरशी थाकेरशी और अन्य बनाम प्रद्युम्न एस. सी. सिंह जी अर्जुन सिंह जी एआईआर 1970 एससी 1273; आर. आर. वर्मा और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 1980 (3) एस सी आर 478: 1980 (3) एस. सी. सी. 402; बंसी लाल बनाम चंदन लाल और अन्य (1976) 1 एससीसी 421: ए.आई.आर 1976 एस. सी. 370; बलवंत सिंह बनाम बिहार राज्य (1977) 4 एससीसी 448: (1978) एससीआर 604; सुभाष चंदर बनाम राज्य (चंडीगढ़ प्रशासन.) (1980) 2 एससीसी 155: (1980) 2 एससीआर 44; राजेंद्र कुमार जैन बनाम राज्य (1980) 3 एससीसी 435: ए.आई. आर. 1980 एससी 1510 ; बिहार राज्य बनाम राम नरेश पांडे 1957 क्रि.एलजे 567: ए. आई. आर. 1957 एससी 389; वी. एस. अच्युतानंदन बनाम आर.बालकृष्ण पिल्लई और अन्य (1994) 4 एससीसी 299; राहुल अग्रवाल बनाम राकेश जैन और अन्य (2005) 2 एससीसी 377; बैराम मुरलीधर बनाम ए. पी. राज्य (2014) 10 एस. सी. सी. 380; विजयकुमार बलदेव मिश्रा उर्फ शर्मा बनाम महाराष्ट्र (2007) 12 एस. सी.

सी. 687; उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पाधी (2005) 1 एस. सी. सी. 568- संदर्भित।

केस लॉज संदर्भ

(2004) 7 SCC 338	संदर्भित	अनुच्छेद 4
ए.आई.आर. 1970 एससी 1273	संदर्भित	अनुच्छेद 21
1980 (3) एससीआर 478	संदर्भित	अनुच्छेद 21
1983 (2) एससीआर 61	संदर्भित	अनुच्छेद 21
(1987) 1 एससीसी 288	अनुसरण किया	अनुच्छेद 34
(1976) 1 एस. सी. सी. 421	संदर्भित	अनुच्छेद 34
(1978) 1 एससीआर 604	संदर्भित	अनुच्छेद 34
(1980) 2 एससीआर 44	संदर्भित	अनुच्छेद 34
(1980) 3 एससीसी 435	संदर्भित	अनुच्छेद 34
1957 क्रि एल. जे. 567	संदर्भित	अनुच्छेद 34
(1994) 4 एससीसी 299	संदर्भित	अनुच्छेद 35
(2005) 2 एससीसी 377	संदर्भित	अनुच्छेद 36
(2014) 10 एससीसी 380	संदर्भित	अनुच्छेद 37

(2007) 12 एस. सी. सी. 687	संदर्भित	अनुच्छेद 38
(2005) 1 एस. सी. सी. 568	संदर्भित	अनुच्छेद 44
(2014) 8 एस. सी. सी. 470	पर निर्भर	अनुच्छेद 48

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: क्रिमिनल अपील संख्या.99/2016

सी.आर.एल.एम. सी. सं. 2055/2015 में दिल्ली उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के दिनांक 30.07.2015 के निर्णय और आदेश से

के साथ

सीआरएल. ए. नं. 100 , 101 और 102-104/2016

अपीलार्थी के लिए दुष्यंत ए. दवे, संडू मल्होत्रा, सुकुमार पट जोशी, अजय आनंद जोना, अशोक कुमार शर्मा, राखी रे, रंजीत बी. राउत, हरीश पांडे, आर. एस. गुलिया, उदय बी. वाविकर, बीना गुप्ता।

सुशील कुमार, आदित्य कुमार, गुरप्रीत सिंह राय, ए. डी. एन. राय, अतुल शर्मा, ए. वेंकटेश, गुरप्रीत सिंह, अमरजीत सिंह बेदी, सतीश कुमार उत्तरदाताओं के लिए।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया

दीपक मिश्रा, न्यायाधिपति।

1. अनुमति दी गई।

2. तथ्यात्मक मैट्रिक्स प्राप्त करने में एक परिदृश्य शामिल है जिसमें काफी समय लगता है, और घटनाओं का कालक्रम भयावह तस्वीर पेश करता है, जैसा श्री दुष्यंत ए. डेव और सुश्री इंदु मल्होत्रा के रूप में विद्वान वरिष्ठ वकील ने इस सूत्रीकरण पर उग्र तीव्रता और अभिव्यंजक चिंता के साथ प्रस्तुत किया कि निर्दोष दिखने वाली कानूनी प्रणाली का दोहन , वास्तव में, विचलन का मार्ग प्रशस्त करता है जिससे न्याय की दयनीय विफलता हुई है, क्योंकि हर स्तर पर कानून की प्रक्रिया का वास्तविक दुरुपयोग हुआ है। अपीलार्थियों के विद्वान वकील ने उत्तरदाताओं पर दोष लगाया, क्योंकि उन्होंने संभवतः हस्तक्षेप की मांग करने वाले कई अवसरों पर उच्च न्यायालय का दौरा किया है संभवतः यह विचार रखते हुए कि यह एक नियमित अभ्यास है। इस तरह के अन्वेषण में, असफल होने के बावजूद उन्हें कोई हताशा महसूस नहीं हुई है, क्योंकि इच्छा शिकायत को कम करने की नहीं बल्कि समय की खपत की थी, जो अपने आप में फायदेमंद है क्योंकि मुकदमेबाजी के परिणामों को स्थगित कर दिया गया है। हालाँकि, उच्च न्यायालय के पिछले दौरे से कुछ लाभ हुआ है, जिससे अपीलकर्ताओं को इस दलील के अलावा कई आधारों पर लगाए गए आदेश की कड़ी आलोचना करने में परेशानी हुई है कि न्याय का उद्देश्य कठिन हो गया है, क्योंकि ऐसी स्थिति में अभियोजन और अभियुक्त, एक तीसरा पक्ष है, अपराध का पीड़ित, जो मामले की प्रगति का उत्सुकता से इंतजार करता है, जैसा कि कानून में अनिवार्य है।। उक्त

रुकावट ने मुखबिर को विशेष अनुमति के माध्यम से अपील करने के लिए प्रेरित किया है।

3. वर्तमान में तथ्यों पर। वर्तमान मामले में, तथ्य एक भूलभुलैया को दर्शाते हैं जिसमें सोच की दिशा बदलने की क्षमता होती है। इसलिए उचित छान-बीन के बाद तथ्यों को उजागर करना अनिवार्य है। अपीलकर्ता ने पुलिस थाना कनॉट प्लेस में एफआईआर संख्या 90/2000 दर्ज करके आपराधिक कानून को गति दी, जो भारतीय दंड संहिता की धारा 406, 409, 420, 424, 467, 468, 471, 477-ए और 120 बी के तहत दर्ज की गई। भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) आर्थिक अपराध शाखा, अपराध शाखा, दिल्ली पुलिस द्वारा जांच के बाद 18.01.2003 को आरोप पत्र दायर किया गया था। आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ लगाए गए आरोपों में से एक निश्चित राशि के धोखाधड़ी वाले लेनदेन से संबंधित है। विद्वान मजिस्ट्रेट ने आदेश दिनांक 18.01.2003 के तहत, रिकॉर्ड पर मौजूद तत्वों की सराहना करते हुए, विचाराधीन अपराधों का संज्ञान लिया और 04.09.2003 को उपस्थिति की तारीख तय करते हुए आरोपी व्यक्तियों को बुलाया। समन जारी करने के आदेश सीआरएल.एम.सी. क्रमांक 911/2003 को दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी साथ ही एफआईआर को रद्द करने की प्रार्थना की गई और 04.03.2003 को एक आदेश पारित किया गया। जैसा कि तथ्यात्मक स्कोर से पता चलता है, मामला दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित था और यह कई दिनों

तक चलता रहा और, जैसा कि आरोप लगाया गया है, उस विद्वान न्यायाधीश को मामले से अलग करने के लिए एक आवेदन दायर करके कार्यवाही को पटरी से उतारने का प्रयास किया गया था जिसने काफी हद तक सुनवाई की थी। उक्त आवेदन खारिज कर दिया गया और बिना किसी सफलता के एक विशेष अनुमति याचिका में इस न्यायालय के समक्ष बर्खास्तगी के आदेश पर सवाल उठाया गया। इसके बाद, आरोपी व्यक्तियों ने समन के आदेश को विचारण न्यायालय के समक्ष चुनौती दी, जिस पर विचार नहीं किया गया, जैसा कि दिनांक 27.04.2010 के आदेश से स्पष्ट है। उक्त आदेश पर सीआरएल.एम.सी. क्रमांक 2040/2010 में हमला किया गया था जो 04.06.2010 को खारिज हो गया। उक्त मामले में, विद्वान एकल न्यायाधीश ने पहले के आपराधिक मामलों पर ध्यान दिया एम.सी.संख्या 911/2003, 1992/2006, 2142/2007, 2229/2007, 1988/2008 और 64/2006 और रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 498/2005, 208/2006, 1191/2006 और 1210/ 2006 को चुनौती दे रहे हैं सम्मन आदेश जो 04.03.2010 तक उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित रहा। 04.03.2010 को उच्च न्यायालय ने देखा कि याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील नहीं चाहते थे कि मामले का निपटारा गुण-दोष के आधार पर किया जाए और उन्होंने इस न्यायालय के समक्ष उठाए गए सभी बिंदुओं को विचारण न्यायालय में उचित स्तर पर उठाने की स्वतंत्रता मांगी। /आरोप पर दलीलें सुनने के चरण में। ऐसा देखने के बाद ,उच्च न्यायालय ने कहा कि:-

"इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए पांच वर्ष से अधिक की अवधि तक मामले का लंबित रहना और इस बात को ध्यान में रखते हुए कि अंततः यह विचारण न्यायालय पर निर्भर है यह तय करें कि इसमें आरोप तय किया जाना है या नहीं याचिकाकर्ता के खिलाफ उपरोक्त मामला और आगे तय करना है कि क्या समन आदेश जारी करने के औचित्य आदि के बारे में याचिकाकर्ता की ओर से उठाई गई कुछ आपत्तियों को देखते हुए मामला आगे बढ़ना चाहिए या नहीं, याचिकाकर्ताओं को उठाए गए सभी मुद्दों को उठाने की स्वतंत्रता देना उचित होगा। यह याचिका इस न्यायालय के समक्ष संबंधित न्यायालय के समक्ष उचित स्तर/ संबंधित न्यायालय के समक्ष आरोप तय करने के स्तर पर है।"

4. जैसा कि स्पष्ट है, विद्वान एकल न्यायाधीश ने राय दी थी कि याचिकाकर्ताओं ने समन आदेश को चुनौती देने के अपने अधिकार को छोड़ दिया था याचिका में किसी भी उचित स्तर पर/आरोप पर दलीलें सुनने के स्तर पर सभी बिंदुओं और मुद्दों को उठाने की स्वतंत्रता दी गई है। जब मुद्दा विद्वान् मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किए जाने पर उन्होंने अभिनिर्धारित किया कि याचिकाकर्ता के इस तर्क को स्वीकार करना संभव नहीं है कि उचित स्तर का अर्थ है कि निचली अदालत को समन आदेश

की फिर से जांच करनी होगी। “उचित स्तर पर" शब्द की व्याख्या कानून के अनुसार और पहले के निर्णय के अनुसार अनुमत स्तर के रूप में की गई थी, क्योंकि यह न्यायालय का इरादा नहीं था और इसके अलावा याचिकाकर्ता को विचारण न्यायालय के समक्ष समन आदेश को चुनौती देने के लिए कोई स्वतंत्रता नहीं दी गई थी। विद्वान मजिस्ट्रेट ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अदालत प्रसाद बनाम रूपलाल जिंदल और अन्य (2004) 7 एस सी सी 338 के फैसले का हवाला दिया कि उनके पास सम्मन आदेश वापस लेने का अधिकार नहीं है। उक्त आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई और याचिकाकर्ता के विद्वान वकील की याचिका को खारिज करते हुए, उच्च न्यायालय ने देखा कि सम्मन आदेश को पहले उन याचिकाओं में चुनौती दी गई थी जो 2003/2006/2007 से 04.03.2010 तक लंबित थीं और इसके बाद याचिकाकर्ता ने चुनौती छोड़ दी थी। उच्च न्यायालय ने यह कहते हुए याचिका खारिज कर दी कि याचिकाकर्ताओं द्वारा 3-6 वर्षों से उच्च न्यायालय में लंबित याचिकाओं को वापस लेने के बाद उन्हें वही प्रश्न उठाने की अनुमति देना उचित नहीं होगा।

5. उक्त आदेश को विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 6336/2010 में चुनौती दी गई, जिसे खारिज कर दिया गया।

6. यहां यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी) की धारा 173 (8) के तहत आरोपी व्यक्तियों द्वारा

एफआईआर संख्या 90/2000 की दोबारा जांच की मांग करने वाला एक आवेदन का भाग्य पूरी तरह से खारिज़ होना ही था इस आधार पर कि आरोप साबित करने के लिए रिकॉर्ड पर पर्याप्त सबूत थे और दोबारा जांच से कोई उद्देश्य पूरा नहीं होगा। प्रयास की निरर्थकता ने अभियुक्त को विवश कर दिया व्यक्तियों को कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए 24.09.2010 को एक आवेदन दाखिल करने को जो एफआईआर संख्या 90/2000 से उत्पन्न हुआ मुख्य मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट के समक्ष अन्य एफआईआर के साथ परंतु प्रयास निरर्थक हो गया।

मुख्य मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट के समक्ष अन्य प्राथमिकियों के साथ एफ. आई. आर. संख्या 90/2000 से उत्पन्न हुआ लेकिन प्रयास व्यर्थ में एक अभ्यास बन गया।

7. इसके बाद जो हुआ, जैसा कि विद्वान वरिष्ठ वकील श्री दुष्यंत ए. डेव ने कहा, वह एक दुखद और चौंकाने वाला अनुमान है। एक समिति एस/श्री अरविंद रे (प्रधान सचिव (गृह)-अध्यक्ष), एस. पी. गर्ग (प्रधान सचिव (कानून), बी. एस. जून (अभियोजन निदेशक), संदीप गोयल (संयुक्त सी. पी. अपराध) और बी. एम. जैन (डिप्टी कमिश्नर) सचिव (गृह) सदस्य सचिव) शामिल थे। समिति ने 60 मामलों को वापस लेने के लिए और कुछ चर्चा के बाद प्रत्येक मामले में अपनी सिफारिश भेजी। 11.07.2011 को भारत सरकार के अवर सचिव , गृह मंत्रालय ने प्रतिवादी नंबर 1 एस.पी. गुप्ता, अध्यक्ष, सन एयर होटल्स प्राइवेट लिमिटेड, बंगला साहिब

रोड, नई दिल्ली को पत्र लिखा और सूचित किया कि एफआईआर संख्या 90/2000, 99/2002 को बंद करने का उनका अनुरोध और 148/2002 की कानून और न्याय मंत्रालय के परामर्श से विस्तार से जांच की गई थी और एफआईआर संख्या 90/2000, 99/2002 और 148/2002 के संबंध में सीआरपीसी की धारा 321 के तहत अभियोजन वापस लेने की उनकी सलाह पहले ही दी जा चुकी थी गृह विभाग, एनसीटी दिल्ली सरकार को उनके स्तर पर आवश्यक कार्रवाई के लिए अवगत करा दिया गया है और जहां तक एफआईआर संख्या 315/2005 का सवाल है, मामले में निर्णय लेने के लिए दिल्ली पुलिस से अधिक जानकारी की प्रतीक्षा की जा रही है।

8. 13.09.2011 को, उक्त स्क्रीनिंग कमेटी ने पहली एफआईआर संख्या 90 /2000 के संबंध में प्रतिवादी के मामले से निपटते हुए मामले को वापस लेने की सिफारिश की। हम उक्त अनुशंसा को पुन: प्रस्तुत करना उचित समझते हैं:-

"समिति की सिफ़ारिशें

समिति ने पाया कि मुकदमा संख्या 90/2000 को अभियोजन से वापस लेने पर समिति ने 3.6.2011 को हुई अपनी पिछली बैठक में विचार किया था और मामले के प्रासंगिक रिकॉर्ड के अभाव में मामले को स्थगित कर दिया गया था।

हालाँकि, पुलिस विभाग और अभियोजन निदेशक से प्राप्त विवरण/रिकॉर्ड को समिति द्वारा देखा गया और यह पाया गया कि गृह मंत्रालय ने पहले

ही कानूनी मामलों, कानून और न्याय विभाग के परामर्श से मामले की जांच कर ली है, जिसने संघ की मंजूरी के साथ गृह मंत्री ने गृह विभाग को तत्काल जांच करने का निर्देश दिया है उपरोक्त प्रकरण में धारा 321 सीआरपीसी के तहत कार्यवाही हेतु अभियोजन की तुरंत निकासी के लिए।

उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए समिति ने मामले को अभियोजन से वापस लेने की सिफारिश करने का निर्णय लिया।

9. एफ.आई.आर.सं. 99/2000 और अन्य मामलों के संबंध में, समान अभियोजन से वापस लेने के लिए सिफारिशें की गईं। दिल्ली के उपराज्यपाल ने अभियोजन से मामलों को वापस लेने के लिए जांच समिति की सिफारिशों पर विचार किया और निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने के बाद निम्नलिखित मामलों को वापस लेने का आदेश दियाः

1. एफआईआर संख्या 46/11 पुलिस थाना -सिविल लाइन्स दर्ज की गई अधिनियम/धारा 188 आईपीसी के तहत सरकारी स्कूल शिक्षक संघ के खिलाफ।

2. अभियुक्त श्री एस.पी. गुप्ता एवं अन्य के विरुद्ध एफआईआर संख्या 148/2002 पुलिस थाना-डिफेंस कॉलोनी दर्ज की गई अन्तर्गत धारा 384/406/409/421/422/465/467/468/120-बी आईपीसी।

3. अभियुक्त श्री एस.पी. गुप्ता एवं अन्य के विरुद्ध एफआईआर संख्या 90/2000 पुलिस थाना कनॉट प्लेस दर्ज की गई अन्तर्गत

अधिनियम/धारा 120 बी, 406, 409, 420, 467, 468, 471, 477-ए आईपीसी।

4. अभियुक्त श्री एस.पी. गुप्ता एवं अन्य के विरूद्ध एफआईआर संख्या 99/2002 थाना-कनॉट प्लेस पंजीकृत अन्तर्गत धारा 120-बी, 406, 420, 424, 467, 468, 471/477-ए आईपीसी। इसके अतिरिक्त, आईपीसी की धारा 332/341 के तहत एफआईआर संख्या 677/01 पीएस सुल्तानपुरी को भी वापस ले लिया गया है।

वर्तमान अपीलें उपरोक्त सूची में पिछले तीन मामलों से संबंधित हैं।

10. सिफ़ारिश के बाद, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार के गृह विभाग ने सीआरपीसी की धारा 32 के तहत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए अभियोजन कार्यवाही को वापस लेने के संबंध में भारत सरकार, गृह मंत्रालय की अधिसूचना संख्या यू-11011/2/74-यूटीएल(I) दिनांक 20.03.1974 के पठित, अभियोजन से वापसी की मंजूरी दी और निर्देश दिया गया कि संबंधित सहायक लोक अभियोजक को उपरोक्त उल्लेखित मामलों को वापस लेने के लिए सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय में आवेदन दायर करने के लिए कहा जा सकता है।

11. सरकार द्वारा आदेश जारी करने के बाद, सहायक लोक अभियोजक ने एफआईआर संख्या 90/2000 के संबंध में अभियोजन वापस लेने के लिए धारा 321 सीआरपीसी के तहत 24.11.2011 को एक आवेदन

दायर किया संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष, अन्य बातों के साथ, यह कहते हुए कि उसने की गई जांच को परख लिया था और लगाए गए आरोप की प्रकृति के माध्यम से आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप पत्र और मामले के तथ्यों से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि यह वास्तव में पक्षों के बीच एक वाणिज्यिक लेनदेन था, लेकिन इसकी परिणति आपराधिक अपराधों में हो गई थी और यहां तक कि संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए भी मामले, आरोप की प्रकृति और रिकॉर्ड पर उपलब्ध तत्वों के अनुसार, दोषसिद्धि की कोई संभावना नहीं थी, और इसलिए, सार्वजनिक हित में मामलों को वापस ले लिया जाना चाहिए। आरोपी व्यक्तियों से संबंधित अन्य मामलों के संबंध में भी इसी तरह के आवेदन दायर किए गए थे।

12. जब मामला इस प्रकार बना रहा , श्री बी.एस. जून, अभियोजन निदेशक, दिल्ली ने दिनांक 13.12.2011 को पत्र के माध्यम से प्रधान सचिव (गृह), गृह (पुलिस) विभाग, सरकार एनसीटी दिल्ली को लिखा 'राज्य बनाम एस.पी. गुप्ता और अन्य' शीर्षक वाली एफआईआर संख्या 90/2000, 99/2002 और 148/2002 के मामलों में अभियोजन से वापसी के लिए, कनॉट प्लेस और डिफेंस कॉलोनी पुलिस थानों ने कहा कि अवलोकन के बाद उपरोक्त मामलों के आरोप पत्रों से पता चला है कि आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ रिकॉर्ड पर पर्याप्त तत्व थे और इस बात की पूरी संभावना थी कि संबंधित अदालत धारा 321 के तहत दायर राज्य के

आवेदन को अनुमति नहीं दे सकती, जो कि एक पूर्व-अवश्यकता है किसी भी मामले के अभियोजन से वापसी के लिए अपेक्षित शर्त, और तदनुसार निर्देश मांगे गए कि क्या संबंधित सहायक लोक अभियोजक को उपरोक्त आवेदनों को दवाब देना चाहिए या नहीं।

13. श्री अरविंद रे, जो जाँच समिति के सदस्य थे, ने एक टिप्पणी दी। प्रासंगिक भाग निम्नलिखित प्रभाव के लिए हैः

"अभियोजन निदेशालय, जीएनसीटी दिल्ली और विभाग द्वारा आरोप पत्र की जांच के बाद सामने आए तथ्यों के आलोक में और अभियोजन निदेशालय के अनुरोध पर विचार करते हुए आवश्यक निर्देश जारी करने के लिए कि क्या संबंधित सहायक लोक अभियोजक के पास प्रेस आवेदन है श्री सुनील चौधरी, लेफ्टिनेंट एसीएमएम, तीस हजारी कोर्ट के समक्ष उनके द्वारा दायर उपरोक्त मामलों को वापस लेने के लिए सुनवाई की अगली तारीख यानी 17.12.2011 को या नहीं। यह प्रस्तावित है कि अभियोजन वापस लेने की सिफारिश की जाए उपर्युक्त मामलों के संबंध में जो पहले से अनुमोदित है,मामलों को उचित आदेश के लिए सक्षम प्राधिकारी यानी दिल्ली के माननीय उपराज्यपाल के समक्ष रखा जा सकता है।"

14. उपराज्यपाल ने सिफारिशों के आधार पर दिनांक 15.12.2011 को निम्नलिखित आदेश पारित किया:-

“मैंने अभियोजन निदेशक के दिनांक 13.12.2011 और संचार और प्रमुख सचिव (गृह) दिनांक 14.12.2011 के नोट पर विचार किया है और इस प्रस्ताव से सहमत हूं कि मुकदमे की प्रतीक्षा कर रहे उपरोक्त मामलों को वापस लेने की पूर्व सिफारिश सक्षम अदालत के समक्ष नहीं की जा सकती है और मुकदमे को गुण-दोष के आधार पर आगे बढ़ने की अनुमति दी जाए।"

15. मामलों को वापस लेने के लिए आवेदनों पर दबाव न डालने के प्रस्ताव से सहमत उपराज्यपाल के दिनांक 15.12.2011 के आदेश को रिट याचिका (सी) संख्या 3470/2012 और संबंधित मामलों में विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष चुनौती दी गई थी। विद्वान एकल न्यायाधीश ने कानून के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया और माना कि याचिकाकर्ताओं के लिए यह तर्क देने का कोई आधार नहीं है कि सीआरपीसी की धारा 321 के तहत आवेदन दायर करने का विद्वान सहायक लोक अभियोजक का निर्णय उनके द्वारा स्वतंत्र रूप से लिया गया था, जबकि बाद का निर्णय सीआरपीसी की धारा 321 के तहत आवेदन के बाद लिया गया प्रतिवादी के आदेश के अधीन था। इसके बाद विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा इस प्रकार इस प्रकार देखा गयाः-

> "याचिकाकर्ताओं द्वारा यह विवादित नहीं है कि इस बीच, विद्वान एम. एम. ने आवेदन वापस लेने की अनुमति दे दी है धारा 321 सीआरपीसी के तहत दिनांकित

07.01.2012 आदेश के अनुसार। याचिकाकर्ताओं द्वारा यह विवादित नहीं है कि उन्होंने धारा 321 सीआरपीसी के तहत उक्त आवेदनों को वापस लेने का विरोध किया और उक्त आवेदनों पर विद्वान एम. एम. द्वारा उनकी सुनवाई की गई। यह भी विवाद में नहीं है कि याचिकाकर्ताओं ने पहले से ही धारा 321 सीआरपीसी के तहत आवेदनों को वापस लेने की अनुमति देने वाले विद्वान मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेशों के संबंध में उनके लिए उपलब्ध उपाय को प्राथमिकता दी है। सीआरपीसी की धारा 321 के तहत आवेदनों को वापस लेने की अनुमति देते हुए, याचिकाकर्ताओं को न केवल इस न्यायालय के समक्ष उठाए गए सभी मुद्दों को विद्वान मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट के समक्ष उठाने का अवसर मिला है, बल्कि उन्हें मामले को आगे बढ़ाने और उठाने का भी अधिकार है। उचित कार्यवाही में उनके लिए सभी मुद्दे उपलब्ध हैं।"

16. उपराज्यपाल द्वारा दिए गए निर्देशों के आधार पर, सहायक लोक अभियोजक ने अभियोजन वापस लेने के लिए पहले दिए गए आवेदन को वापस लेने के लिए एक आवेदन दायर किया। वापसी के लिए आवेदन में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि मामले की फाइल और रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों की गहन जांच के बाद, उन्होंने पाया कि आरोपी व्यक्तियों के

खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त सबूत हैं और इसलिए, पहले के आवेदन को बिना दवाब निपटाया जाना चाहिए।

17. इस दृष्टिकोण के कारण, उच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत विवेकाधीन अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से इनकार कर दिया। कथित आदेश अंतर-न्यायालय अपीलों का विषय बन गया। उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने कई पक्षों को संबोधित करते हुए अपीलों को विचारणीय नहीं होने के साथ-साथ सीमा द्वारा वर्जित बताते हुए खारिज़ कर दिया। उच्च न्यायालय की खंड पीठ द्वारा पारित आदेश के कानूनी औचित्य पर इस न्यायालय के समक्ष एक विशेष अनुमति याचिका (सी) सीसी संख्या 7447-7448 /2014 में सवाल उठाया गया था, जिसे 09.05.2014 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया था।

18. इस बीच, आरोपी व्यक्तियों से संबंधित विभिन्न मामलों में विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा 07.01.2012 को पारित आदेश को पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष कई संशोधनों में प्रश्न में रखा गया था। विद्वान विशेष न्यायाधीश, पटियाला हाउस कोर्ट ने पुनरीक्षण याचिका पर विचार करते हुए, तथ्यों को पूरी तरह से सुनाया, पक्षों के विद्वान वकील द्वारा प्रस्तुत दलीलों को गौर किया और राय दी कि कोई भी पक्ष जिसे मजिस्ट्रेट न्यायालय के समक्ष आवेदन/याचिका दायर करने का अधिकार है उसके पास इसे वापस लेने का अंतर्निहित अधिकार है और इसके परिणामस्वरूप मजिस्ट्रेट की अदालत के पास अभियोजन से वापसी के लिए आवेदन

वापस लेने की मांग करने वाले आवेदन को अनुमति देने का अधिकार क्षेत्र होगा। उन्होंने दो अवधारणाओं के बीच अंतर किया, अर्थात् संज्ञान लेने वाले आदेश को वापस लेना और अभियोजन से वापसी के लिए आवेदन को वापस लेने की अनुमति देना। इस विचार के चलते, उन्होंने दिनांक 15.11.2014 के आदेश द्वारा पुनरीक्षण आवेदनों को खारिज कर दिया।

19. आरोपी उत्तरदाताओं ने अपनी अथक प्रवृत्ति से जुड़े रहते हुए दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष याचिकाओं की श्रृंखला को प्राथमिकता दी, जिसने 15.05.2015 को निम्नलिखित आदेश पारित किया: -

"विद्वान अतिरिक्त लोक अभियोजक श्री नवीन शर्मा, प्रतिवादी-राज्य की ओर से नोटिस स्वीकार करते हैं और श्री हरीश पांडे, अधिवक्ता, शिकायतकर्ता/एफआईआर के पहले मुखबिर की ओर से नोटिस स्वीकार करते हैं।

पक्षों के विद्वान वकील की सहमति से, उपरोक्त तीन याचिकाओं पर आज अंतिम सुनवाई के लिए एक साथ विचार किया जाता है। दोनों पक्षों की ओर से सुनवाई पूरी हो गई है.

दोनों पक्षों को 5 से 7 पृष्ठों का संक्षिप्त सारांश दाखिल करें आज से एक सप्ताह के भीतर, प्रासंगिक केस लॉज के साथ, यदि कोई हो तो उसी का आदान-प्रदान के बाद।

29 मई, 2015 को ऑर्डर के लिए रखें। इस बीच, विचारण न्यायालय इन याचिकाओं में निर्धारित तिथि के बाद एक तारीख तय करती है।

20. 22.05.2015 पर अपीलार्थी की ओर से धारा 340 सीआरपीसी के तहत कार्यवाही शुरू करने के लिए एक आवेदन दायर किया गया था सह पठित धारा 195 (1) सीआरपीसी या अभियुक्त व्यक्तियों के खिलाफ अवमानना कार्यवाही शुरू करने हेतु। 22.05.2015 पर अपीलार्थी का एक प्रारंभिक सामान्य लिखित सारांश दायर किया गया था जिसमें सी.आर.एल.एम. सी. सं. 2055/2015 को खारिज़ करने की मांग की गई थी। 29.05.2015 पर, उच्च न्यायालय ने स्पष्टीकरण के लिए याचिका को सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया। जैसा कि तथ्यों से पता चलता है, 15.07.2015 पर उच्च न्यायालय ने एक सप्ताह के भीतर संक्षिप्त सारांश दाखिल करने का निर्देश दिया। उक्त आदेश का पालन किया गया।

21. सुनवाई के दौरान, उच्च न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा यह तर्क दिया गया था कि ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिसके तहत धारा 321 सीआरपीसी के तहत दिए गए आवेदन को वापस लिया जा सके। पटेल नरशी थाकेरशी और अन्य बनाम प्रद्युम्न सिंह जी अर्जुन सिंह जी ए. आई.आर. 1970 एससी 1273 पर निर्भर किया गया था, आर. आर. वर्मा और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 1980 (3) एससीसी 402 और सुभाष चंदर बनाम राज्य (चंडीगढ़) प्रशासन) और अन्य

ए.आई.आर 1980 एस सी. 423 यह तर्क देना कि समीक्षा की शक्ति विशेष रूप से प्रदान नहीं की गई है मजिस्ट्रेट द्वारा इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता है। यह भी आग्रह किया गया कि जब परिस्थितियों में कोई बदलाव नहीं हुआ था, तो अभियोजन से वापस लेने के लिए आवेदन गलत था और निचली अदालतों ने कानूनी रूप से बिना सोचे समझे आवेदन वापस लेने की अनुमति देने में गलती की थी। इसके अलावा, यह प्रस्तावित किया गया था कि नीचे दिए गए दोनों न्यायालयों ने गंभीर रूप से गलती की थी। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को समझने में विशेष रूप से, शीओनानंदन पासवान बनाम बिहार राज्य और अन्य 1983 एस. सी. 194: 1983 (1) एस. सी. सी. 438 में और यह कि विद्वान् मजिस्ट्रेट के साथ-साथ विशेष न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित नहीं किया कि धारा 321 सीआरपीसी के तहत आवेदन को वापस लेने के लिए आवेदन पूरी तरह से अनुचित था। राज्य के लिए विद्वान वकील सरकार द्वारा की गई कार्रवाई और नीचे दी गई अदालतों द्वारा पारित आदेश का समर्थन किया।

22. पक्षों के लिए विद्वान वकील द्वारा उठाए गए प्रस्तुतिकरणों पर विचार करते हुए, विद्वान एकल न्यायाधीश ने धारा 321 सीआरपीसी के तहत अधिकारियों और लोक अभियोजक की भूमिका का उल्लेख करने के बाद राय इस प्रकार दी:

"....निर्विवाद रूप से यह लोक अभियोजक है जिसे निर्णय लेना है न कि सरकार या उपराज्यपाल को। इसलिए, उपराज्यपाल द्वारा सीआरपीसी की धारा 321 के तहत आवेदन वापस लेने के लिए सहमति देने के खिलाफ रिट याचिका को खारिज करने पर निचली अदालतों द्वारा गलती से भरोसा किया गया है, विशेष रूप से तब जब रिट याचिका पर निर्णय लेते समय आपराधिक अदालतों के समक्ष उपचार लेने का अधिकार संरक्षित रखा गया था..."

23. इस दृष्टिकोण के कारण, उच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्देश दियाः

" परिणामस्वरूप, विवादित आदेशों को रद्द कर दिया जाता है और निचली अदालत को चार सप्ताह के भीतर दूसरे आवेदन पर फैसला करने का निर्देश दिया जाता है। 16 दिसंबर, 2011 (अनुलग्नक पी-13) अर्थात सीआरपीसी की धारा 321 के तहत आवेदन वापस लेने के लिए जैसा कि ऊपर बताया गया है, कानूनी स्थिति के आलोक में और इसे ध्यान में रखने के बाद, याचिकाकर्ता द्वारा दायर दस्तावेज (औं) के साथ सीआरपीसी की धारा 91 के तहत आवेदन के साथ।

24. उच्च न्यायालय द्वारा आदेश पारित करने के बाद, विद्वान मजिस्ट्रेट ने सीआरपीसी की धारा 321 के तहत पहले दिए गए आवेदनों को वापस लेने की मांग करने वाले आवेदनों पर विचार किया। विद्वान

मजिस्ट्रेट ने दिनांक 22.09.2015 के आदेश द्वारा आवेदन वापस लेने की प्रार्थना को स्वीकार करने से इनकार कर दिया है।

25. इन अपीलों में अपीलार्थी ने मूल रूप से विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को चुनौती दी थी, जिसके द्वारा उन्होंने धारा 321 सीआरपीसी के तहत आवेदन को वापस लेने के आदेश को रद्द कर दिया था और निचली अदालत को धारा 91 सीआरपीसी के तहत दायर आवेदन के साथ सूचना देने वाले द्वारा दायर दस्तावेजों पर विचार करने के बाद वापस लेने के लिए आवेदन पर नए सिरे से निर्णय लेने का निर्देश दिया था। प्रेषण के बाद, विद्वान मजिस्ट्रेट ने आवेदन को वापस लेने की अनुमति देने से इनकार करते हुए आदेश पारित किया है। उक्त आदेश की इस न्यायालय के समक्ष भी आलोचना की गई है।

26. हमने श्री दुष्यन्त ए. दवे, विद्वान वरिष्ठ वकील और सुश्री इंदु मल्होत्रा, अपीलार्थी के विद्वान वरिष्ठ वकील और श्री सुशील कुमार, विद्वान वरिष्ठ वकील, अभियुक्त को सुना है।

27. हम पहले ही घटनाओं का कालक्रम बता चुके हैं। जैसा कि दर्शाया गया है, घटनाओं का क्रम काफी परेशान करने वाला है। समन जारी हुए काफी समय बीत चुका है। उच्च न्यायालयों द्वारा समन जारी करने के आदेश को चुनौती देने वाली याचिकाओं पर विचार न किए जाने के बावजूद, मामला आज भी बना हुआ है, जहां यह 2003 में था। सभी संभावनाओं में आपराधिक कार्यवाही कानून के अनुसार जारी रही होगी इस

अदालत के समन जारी करने के आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार करने के बाद, लेकिन स्क्रीनिंग समिति द्वारा पारित आदेश दिनांक 13.09.2011 पर जिसमें उपरोक्त मामलों के अभियोजन को वापस लेने की सिफ़ारिश की गई जिससे स्थिति में अंतर आया है। उक्त सिफारिश को उपराज्यपाल ने 18.11.2011 पर मंजूरी दी थी। उपराज्यपाल द्वारा पारित आदेश के आधार पर, मामलों को वापस लेने के लिए आवेदन दायर किया गया था। सहायक लोक अभियोजक ने एक आवेदन दायर किया जिसमें कहा गया कि मामले के तथ्यों से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि यह पक्षों के बीच एक वाणिज्यिक लेनदेन का संकेत दे रहा था, लेकिन यह एक आपराधिक मामले में बदल गया था। यह भी उल्लेख किया गया कि यह दीवानी लेन-देन के साथ-साथ वादों के उल्लंघन से संबंधित मामला था। सहायक लोक अभियोजक का विचार था कि मामले में दोषसिद्धि की कोई संभावना नहीं है और तदनुसार उन्होंने सार्वजनिक हित में मामले को वापस लेने की मांग की थी। इसके बाद विवाद केंद्र में आ गया जब अभियोजन निदेशक ने गृह मंत्रालय के प्रधान सचिव को यह कहते हुए सूचित किया कि उपरोक्त मामले में आरोप पत्र के आगे के अवलोकन में यह पाया गया कि अभियुक्त व्यक्तियों के खिलाफ आरोप स्थापित करने के लिए रिकॉर्ड में पर्याप्त सबूत हैं और तदनुसार लोक अभियोजक से अनुरोध किया जाना चाहिए। उपराज्यपाल, जैसा पहले उल्लेखित है, उसी को स्वीकार किया और एक पत्र जारी किया।

28. उस संबंध में अभियोजन के निदेशक द्वारा किए गए संचार पर रिट याचिका (सी) संख्या 3470/2012 में प्रथम प्रतिवादी के बेटे द्वारा चुनौती दी गई। विद्वान एकल न्यायाधीश ने, जैसा कि पहले कहा गया है, रिट याचिका को खारिज कर दिया। उपरोक्त पत्र से व्यथित होकर एल.पी.ए. सं. 548 /2013 प्रस्तुत किया गया जिसे खारिज कर दिया गया और इस अदालत में चुनौती का कोई सार्थक परिणाम नहीं निकला।

29. इस मोड़ पर हम टाइम मशीन में बैठने को मजबूर हैं। धारा 321 सीआरपीसी के तहत आवेदन वापस लेने के लिए आवेदन दिया गया। यह मामला विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा उठाया गया था, जिन्होंने 07.01.2012 को आदेश दिया था कि अभियोजन पक्ष को इस तरह का आवेदन दायर करने से कोई नहीं रोकता है और इस संबंध में बचाव का कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि इस तरह के मामले में आवेदन से कानून के स्थापित मापदंडों के अनुसार निपटना अदालत का कर्तव्य था। जैसा कि कहा गया है, विद्वान मजिस्ट्रेट ने आगे कहा कि धारा 91 सीआरपीसी के तहत आरोपी व्यक्तियों द्वारा दिया गया आवेदन को किसी भी विचार की आवश्यकता नहीं थी और तदनुसार प्रार्थना की अनुमति दी। इसके बाद आरोप पर विचार के लिए मामले को अगली तारीख के लिए स्थगित कर दिया गया।

30. उपरोक्त आदेश को विद्वान विशेष न्यायाधीश, एन.डी.पी.एस., पटियाला हाउस कोर्ट, दिल्ली के समक्ष चुनौती दी गई थी

आपराधिक पुनरीक्षण याचिका संख्या की एक श्रृंखला में 2013 की 12 से लेकर 2013 की 16 तक। पुनरीक्षण अदालत ने दिनांक 15.11.2014 के सामान्य आदेश द्वारा विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश की पुष्टि की। इसके कारण धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन दाखिल किए गए, जिसमें दिनांकित 30.7.2015 का विवादित आदेश पारित किया गया है। यहां यह ध्यान देने योग्य है कि पुनरीक्षण अदालत ने रिट याचिका (सी) संख्या 3470 /2012 में उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश पर निर्भरता रखी है, जिसका शीर्षक विपुल गुप्ता बनाम राज्य और अन्य और संबंधित मामले। विद्वान एकल न्यायाधीश ने पारित आदेश के एक अंश को पुनः प्रस्तुत किया रिट याचिका में एक समन्वित पीठ द्वारा, धारा 321 सीआरपीसी के तहत एक आवेदन पर विचार करते समय अदालत के कर्तव्य से संबंधित कुछ निर्णयों का उल्लेख किया गया और आदेश पारित किया जिसे हमने इससे पहले प्रस्तुत किया है।

31. यहाँ यह बताना अनिवार्य है कि तथ्यात्मक वर्णन एक दुखपूर्ण और साथ ही, एक उलझन को दर्शाता है। गैर-शास्त्रीय अर्थों में बारह साल का समय, "एक युग" बिताना आसान नहीं है, जब तक कि समय बिताने में लगे व्यक्तित्वों ने लगातार "सांप और सीढ़ी का खेल" खेलने की बुद्धि नहीं जुटा ली है, इस तरह के मुकदमे स्पष्ट रूप से दिखाते हैं कि कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अदालत में कार्यवाही को इस आधार पर टालने के लिए अड़ियल रुख रखते हैं कि प्रत्येक आदेश पर आघात किया जा सकता

है और प्रत्येक कदम को वरिष्ठ अदालतों के समक्ष चुनौती दी जा सकती है। यह नहीं समझा जाना चाहिए कि किसी वादी को कानून में आदेशों को चुनौती देने का अधिकार नहीं है, लेकिन कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। मौजूदा मामले में निश्चित रूप से प्रक्रिया का दुरुपयोग किया गया है।

32. इतना कहने के बाद, अब हम उन कानूनी पहलुओं पर गहराई से विचार करने के लिए आगे बढ़ेंगे जिनसे हमारी टिप्पणियाँ दोपहर के दिन के रूप में स्पष्ट होंगी। हम दोहराने की कीमत पर दोहरा सकते हैं कि हम मामले में लगाए गए आरोपों से बिल्कुल भी चिंतित नहीं हैं। उक्त पहलू पर तब विराम लग गया जब इस अदालत ने उच्च न्यायालय के उस आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया था जिसके तहत उच्च न्यायालय ने एफआईआर को रद्द करने के लिए दायर याचिकाओं को खारिज कर दिया था। विचार के लिए उठने वाले मुद्दे हैं (i) क्या सहायक लोक अभियोजक सीआरपीसी की धारा 321 के तहत प्राथमिकता वाले आवेदन को वापस लेने के लिए आवेदन दायर करने का कानून के तहत हकदार है और किसी आवेदन को वापस लेने के लिए दबाव न डालें, (ii) क्या मजिस्ट्रेट कानून में अक्षम है या उसके पास अभियोजन को वापस लेने के लिए आवेदन को प्राथमिकता देने की अनुमति देने का अधिकार क्षेत्र नहीं है, (iii) क्या कार्यवाही के उस चरण में अभियुक्त के पास कोई अधिकार है और (iv) क्या न्यायालय को तथ्यात्मक मैट्रिक्स प्राप्त करने

में भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश से निपटने से इनकार कर देना चाहिए।

33. विवाद को समझने के लिए, हम सीआरपीसी की धारा 321 का संदर्भ ले सकते हैं जो इस प्रकार है:-

> "321. अभियोजन से हटना - किसी मामले के प्रभारी लोक अभियोजक या सहायक लोक अभियोजक, न्यायालय की सहमति से, फैसला सुनाए जाने से पहले किसी भी समय, किसी भी व्यक्ति के अभियोजन से आम तौर पर या संबंध में हट सकते हैं। किसी एक या अधिक अपराधों के लिए जिसके लिए उस पर मुकदमा चलाया गया है; और, ऐसी निकासी पर,
>
> (ए) यदि यह आरोप तय होने से पहले किया जाता है, तो अभियुक्त ऐसे अपराध या अपराधों के संबंध में आरोपमुक्त किया जाएगा;
>
> (बी) यदि यह आरोप लगाए जाने के बाद किया जाता है, या जब इस संहिता के तहत किसी आरोप की आवश्यकता नहीं होती है, तो उसे निम्नलिखित के संबंध में बरी कर दिया जाएगाः
>
> बशर्ते कि जहां ऐसा अपराध हो-

(i) किसी ऐसे मामले से संबंधित किसी भी कानून के खिलाफ था जिसके लिए कार्यपालिका संघ की शक्ति का विस्तार, हो या

(ii) दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान अधिनियम, 1946 (1946 का 25) के तहत दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान द्वारा जांच की गई थी या

(iii) केंद्र सरकार की कोई संपत्ति का दुरूपयोग या विनाश या नुकसान शामिल है, या

(iv) केंद्र सरकार की सेवा में किसी व्यक्ति द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते समय या कार्य करने के लिए प्रतिबद्ध था,

और मामले के प्रभारी अभियोजक को केंद्र सरकार द्वारा नियुक्त नहीं किया गया है, वह तब तक नहीं करेगा, जब तक कि उसे केंद्र सरकार द्वारा ऐसा करने की अनुमति न दी गई हो, अभियोजन से हटने के लिए अदालत की सहमति के लिए आवेदन नहीं करेगा और अदालत, सहमति देने से पहले, अभियोजक को अभियोजन से हटने के लिए केंद्र सरकार द्वारा दी गई अनुमति को उसके समक्ष प्रस्तुत करने का निर्देश दें।"

34. सीआरपीसी की धारा 321 में प्रयुक्त भाषा के संबंध में, हम श्योनंदन पासवान बनाम बिहार राज्य और अन्य (1987) 1 एससीसी 288 में संविधान पीठ के फैसले का उल्लेख कर सकते हैं। जिसमें न्यायालय ने पुरानी संहिता की धारा 333 का उल्लेख किया और भाषा पर ध्यान देने के बाद वर्तमान संहिता की धारा 321 के तहत नियोजित यह अभिनिर्धारित करने के लिए आया कि धारा 321 मामले के प्रभारी लोक अभियोजक को निर्णय सुनाए जाने से पहले किसी भी समय किसी भी व्यक्ति के अभियोजन से पीछे हटने में सक्षम बनाती है, लेकिन वापस लेने के लिए आवेदन को अदालत की सहमति लेनी होती है और यदि अदालत इस तरह की वापसी के लिए सहमति देती है तो आरोपी को आरोप तय नहीं किया गया है या आरोप तय किए जाने पर या जहां ऐसा कोई आरोप तैयार करने की आवश्यकता नहीं है, तो बरी कर दिया जाएगा। यह लोक अभियोजक को किसी भी व्यक्ति, अपराध का अभियुक्त के अभियोजन से पीछे हटने के लिए मौका दिया जाता है दोनों सूरत में जब कोई साक्ष्य नहीं लिया जाता है या भले ही पूर्ण साक्ष्य लिया गया हो। इस शक्ति के प्रयोग की बाहरी सीमा 'निर्णय की घोषणा से पहले किसी भी समय' है। यह भी देखा गया है कि सहमति देने के लिए न्यायिक विवेकाधिकार के प्रयोग में निहित न्यायिक कार्य का आम तौर पर मतलब होगा कि अदालत को खुद को संतुष्ट करना होगा कि लोक अभियोजक के कार्यकारी कार्य का अनुचित तरीके से प्रयोग नहीं किया गया है, या नहीं ,नाजायज कारणों या उद्देश्यों के लिए न्याय की सामान्य प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने का प्रयास नहीं किया

गया हो। संविधान पीठ ने प्राधिकारियों का इनमें हवाला देते हुए बंसी लाल बनाम चंदन लाल और अन्य,(1976) 1 एससीसी 421: एआईआर 1976 एससी 370 ; बलवंत सिंह बनाम बिहार राज्य, (1977) 4 एससीसी 448: (1978) 1 एससीआर 604; सुभाष चंदर बनाम राज्य (चंडीगढ़ प्रशासन) (1980) 2 एससीसी 155: (1980) 2 एससीआर 44 ; राजेंद्र कुमार जैन बनाम राज्य (1980) 3 एससीसी 435: एआईआर 1980 एससी 1510; और बिहार राज्य बनाम रामनरेश पांडे 1957 सीआरआई एलजे 567: एआईआर 1957 एससी 389 में बताए गए सिद्धांतों का जिक्र करते हुए इस प्रकार ठहराया:-

> "99. उपरोक्त सभी निर्णय रामनरेश पांडे मामला (ऊपर) के तर्क का पालन करते हैं और उसके निर्णय में तय किए गए सिद्धांतों पर कोई संदेह नहीं था।
>
> 100. इन निर्णयों के आलोक में हस्तगत मामले पर विचार किया जाना चाहिए। मुझे लगता है कि लोक अभियोजक द्वारा वापसी के लिए आवेदन उनके सामने रखे गए तत्वों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद अच्छे विश्वास में किया गया है और मजिस्ट्रेट द्वारा दी गई सहमति का आदेश भी विभिन्न विवरणों पर उचित विचार करने के बाद दिया गया था, जैसा कि ऊपर बताया गया है। धारा 321 की योजना को ध्यान में रखते हुए, इस

न्यायालय के लिए मामले के तथ्यों और साक्ष्यों की विस्तृत जांच शुरू करना या उसके लिए पुनः सुनवाई का निर्देश देना अनुचित होगा, जो धारा के उद्देश्य और इरादे के लिए विनाशकारी होगा।"

35. इस संदर्भ में, वी.एस.अच्युतानंदन बनाम आर. बालकृष्ण पिल्लई और अन्य (1994) 4 एससीसी 299 में तीन न्यायाधीशों की पीठ के फैसले का संदर्भ प्रासंगिक है। उक्त मामले में, न्यायालय ने श्योनंदन पासवान (उपरोक्त) में संविधान पीठ द्वारा बताए गए सिद्धांतों का उल्लेख करने के बाद, धारा 321 सीआरपीसी के तहत सहायक लोक अभियोजक द्वारा दायर आवेदन को खारिज करने में विद्वान विशेष न्यायाधीश के दृष्टिकोण को बरकरार रखा। इस प्रश्न को टाल दिया गया क्योंकि उसमें यह उठा था कि क्या यह उच्च न्यायालय के लिए कानूनी रूप से स्वीकार्य था और अभियुक्तों के अभियोजन को वापस लेने के लिए सहमति देने से इनकार करने वाले विद्वान विशेष न्यायाधीश के आदेश को रद्द करना उचित था। न्यायालय उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण से सहमत नहीं था क्योंकि उच्च न्यायालय का आदेश उस एकमात्र आधार से बिल्कुल भी संबंधित नहीं था जिस पर विशेष लोक अभियोजक द्वारा आवेदन किया गया था और जिसे विद्वान विशेष न्यायाधीश द्वारा गैर-मौजूद पाया गया था। अपने आदेश में जिसे पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। उच्च न्यायालय ने इस तथ्य को पूरी तरह से नजरअंदाज

करते हुए एक बाहरी क्षेत्र में घूमती हुई जांच शुरू कर दी कि यदि अभियोजन वापस लेने का आग्रह किया गया आधार अस्तित्वहीन था और अभियोजन का समर्थन करने के लिए प्रथम दृष्टया तत्त्व थे, तो अभियोजन शुरू करने का मकसद क्या था? अभियोजन से स्वयं कोई लाभ नहीं हो सकता है। न्यायालय ने यह भी कहा कि उच्च न्यायालय ने मामले के दायरे का सही अर्थ समझने में चूक कर दी, क्योंकि यह उन आधारों पर चला गया जिनके बारे में विशेष लोक अभियोजक ने सीआरपीसी की धारा 321 के तहत अपने आवेदन में भी आग्रह नहीं किया था या अन्यथा विशेष न्यायाधीश के समक्ष भी। इस तथ्य पर अपवाद रखा गया कि उच्च न्यायालय ने राज्य की प्रशासनिक फाइलों को खंगाला जो मामले के रिकॉर्ड का हिस्सा नहीं थीं और इस तथ्य को नजरअंदाज करते हुए राज्य सरकार की ओर से जो कुछ भी सुझाया गया था उसे सीआरपीसी धारा 321 के प्रयोजन के लिए स्वीकार कर लिया इस तथ्य को नजरंदाज करते हुए कि यह अकेले लोक अभियोजक की राय है जो महत्वपूर्ण है और जिस आधार पर वह अभियोजन वापस लेने के लिए अदालत से अनुमति चाहता है, जिसकी जांच की जानी चाहिए।

36. राहुल अग्रवाल बनाम राकेश जैन और अन्य (2005) 2 एससीसी 377 में, न्यायालय ने धारा 321 सीआरपीसी के तहत आवेदन पर विचार करते हुए कुछ निर्णयों का उल्लेख किया गया जिसमें शेओनंदन

पासवान (सुप्रा) में संविधान पीठ के पहले के फैसले की सराहना की गई, और उसके बाद इस प्रकार फैसला सुनाया गया: -

> "इन निर्णयों के साथ-साथ अन्य निर्णयों से भी इसी प्रश्न पर, कानून बहुत स्पष्ट है कि अभियोजन की वापसी की अनुमति केवल न्याय के हित में दी जा सकती है। भले ही सरकार लोक अभियोजक को अभियोजन वापस लेने का निर्देश देती है और इस आशय का एक आवेदन दायर किया जाता है, अदालत को सभी प्रासंगिक परिस्थितियों पर विचार करना चाहिए और यह पता लगाना चाहिए कि क्या अभियोजन वापस लेने से न्याय की दिशा में प्रगति होगी। यदि मामले का अंत बरी होने की संभावना है और मामले के जारी रहने से केवल आरोपी को गंभीर उत्पीड़न हो रहा है, तो अदालत अभियोजन वापस लेने की अनुमति दे सकती है। यदि अभियोजन वापस लेने से विवाद खत्म होने और पक्षों के बीच सामंजस्य आने की संभावना है और यह न्याय के सर्वोत्तम हित में होगा, तो अदालत अभियोजन वापस लेने की अनुमति दे सकती है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 321 के तहत विवेक का प्रयोग अदालत द्वारा सभी प्रासंगिक तथ्यों को ध्यान में रखते हुए सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए और इसका प्रयोग अभियोजन को दबाने के

लिए नहीं किया जाना चाहिए जो कि पीड़ित पक्षों या राज्य के अनुरोध पर किया जा रहा है। उनकी शिकायत का निवारण करने हेतु। प्रत्येक अपराध समाज के प्रति अपराध है और यदि आरोपी ने अपराध किया है, तो समाज मांग करता है कि उसे दंडित किया जाना चाहिए। अपराध को अंजाम देने वाले व्यक्ति को दंडित करना समाज में कानून व्यवस्था और शांति बनाए रखने के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता है। इसलिए, अभियोजन वापस लेने की अनुमति केवल तभी दी जाएगी जब इसके लिए वैध कारण बताए जाएंगे।" [13 (2005) 2 एससीसी 377]

37. बैरम मुरलीधर बनाम ए.पी. राज्य (2014) 10 एससीसी 380 में, उक्त प्रावधान से निपटते समय यह निर्धारित किया गया है कि: -

"..... यह बताना लोक अभियोजक का दायित्व है कि क्या तत्त्व जिस पर उसने विचार किया है। इसे संक्षेप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। अदालत जैसा कि अब्दुल करीम बनाम कर्नाटक राज्य, (2000) 8 एससीसी 710 मामले में ठहराया गया है , एक सूचित सहमति देने की आवश्यकता है। अदालत का स्वयं को संतुष्ट करना अनिवार्य है यह कि कि तत्वों के आधार पर यह उचित रूप से माना जा सकता है कि अभियोजन वापस लेने से सार्वजनिक हित में मामले

मदद मिलेगी। तत्वों को तौलना अदालत के अधिकार क्षेत्र में नहीं है। हालाँकि, अदालत की ओर से यह देखना आवश्यक है कि क्या सहमति देने से कानून का मार्ग बाधित होगा या दब जायेगा या स्पष्ट अन्याय होगा। एक अदालत को जबकि संहिता की धारा 321 के तहत सहमति देने के लिए अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करना आवश्यक है, और जैसा कि कानून में तय है, न्यायिक विवेक का प्रयोग यांत्रिक तरीके से नहीं किया जाना चाहिए। अदालत केवल पूछने पर ऐसी सहमति नहीं दे सकती। यह अपेक्षित है तत्वों पर विचार करने के लिए न्यायालय से यह उचित रूप से अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि अभियोजन को वापस लेने से लोक हित की पूर्ति होगी। यह देखने के लिए कि आवेदन सद्भावना से दायर किया गया था और यह जनहित और न्याय के हित में है। एक अन्य पहलू यह देखने के लिए अदालत बाध्य है कि क्या इस तरह की वापसी न्याय के कारण को आगे बढ़ाना होगी। इसके लिए सावधानीपूर्वक और संबंधित विवेक की आवश्यकता होती है क्योंकि कुछ अपराध राज्य और समाज के खिलाफ होते हैं क्योंकि सामूहिक रूप से न्याय की मांग की जाती है। यह समाज में कानून और व्यवस्था की स्थिति को बनाए रखता है। लोक अभियोजक राज्य सरकार की ओर

से डाकघर की तरह कार्य नहीं कर सकता है। उसे सद्भावना से कार्य करने, अभिलेख पर तत्वों का अध्ययन करने और एक स्वतंत्र राय बनाने की आवश्यकता है कि मामले को वापस लेने से वास्तव में बड़े पैमाने पर सार्वजनिक हित का लाभ होगा। इस संबंध में लोक अभियोजक पर सरकार का आदेश बाध्यकारी नहीं है। वह अपने विधिसम्मत संहिता के तहत दायित्व से अनजान नहीं रह सकता उसे अदालत के प्रति अपने कर्तव्य के साथ-साथ सामूहिक कर्तव्य को लगातार याद रखना आवश्यक है।"

38. इस संदर्भ में, विजयकुमार बलदेव मिश्रा उर्फ शर्मा बनाम महाराष्ट्र राज्य (2007) 12 एससीसी 687 मामले में दो न्यायाधीशों की पीठ के फैसले का संदर्भ फलदायी होगा। उक्त मामले में, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि धारा 321 सीआरपीसी जन अभियोजक या सहायक लोक अभियोजक के कहने पर अभियोजन से वापस लेने का प्रावधान करती है। इसलिए निर्विवाद रूप से न्यायालय की सहमति आवश्यक है। इसलिए, वापस लेने के आधारों के संबंध में न्यायालय की ओर से विवेक का अनुप्रयोग आवश्यक है इसलिए , अभियोजन पक्ष से किसी एक या अधिक अपराधों के संबंध में जिसके लिए अपीलार्थी पर मुकदमा चलाया जाता है। सीआरपीसी के तहत निर्धारित वैधानिक योजना के संदर्भ में लोक अभियोजक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह एक स्वतंत्र व्यक्ति

होना चाहिए। इस तरह का आवेदन दायर करते समय, लोक अभियोजक को भी अपनी बुद्धि और ऐसी अनुमति दिए जाने की स्थिति में समाज पर उसके प्रभाव को लागू करने की आवश्यकता होती है।

39. हमने धारा 321 सीआरपीसी के तहत प्राथमिकता वाले आवेदन पर विचार करते समय न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से संबंधित सिद्धांतों को सूचीबद्ध किया है और लोक अभियोजक की भूमिका पर भी प्रकाश डाला जो है सद्भावना से कार्य करने, अभिलेख पर तत्वों का अवलोकन करने और एक स्वतंत्र राय बनाये कि अभियोजन पक्ष से वापसी वास्तव में बड़े पैमाने पर सार्वजनिक हित को कम करेगी। अधिकारियों ने बताया कि इसमें ऊपर स्पष्ट रूप से कहा गया है कि लोक अभियोजक को डाकघर के रूप में कार्य नहीं करना चाहिए और उससे अपेक्षा की जाती है कि वह न्यायालय के प्रति अपने कर्तव्य के साथ-साथ सामूहिक कर्तव्य को भी याद रखे। [16 (2007) 12 एस. सी. सी. 687 सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट]

40. हस्तगत मामले में, जब उपराज्यपाल द्वारा आदेश पारित किया गया तो रिट याचिका (सी) संख्या 3470 /2012 और संबंधित मामलों में आलोचना की गई थी, विद्वान एकल न्यायाधीश ने संचार और अन्य तथ्यों का विश्लेषण करते हुए समिति और उसके द्वारा पहले लिए गए सभी निर्णयों को उल्लेख किया मामलों में अभियोजन पक्ष से वापस लेने के लिए की गई सिफारिशें का उल्लेख किया। इसके बाद, विद्वान एकल न्यायाधीश ने बैठक के कार्यवृत्त की जांच की और इस तथ्य पर ध्यान

दिया कि आई. डी. 1 पर जांच समिति ने स्पष्ट रूप से अपने विवेक को लागू नहीं किया था या मामलों में दायर आरोप पत्रों की पूरी जांच नहीं की थी, बल्कि गृह मंत्रालय, विधि कार्य विभाग , कानून और न्याय मंत्रालय केंद्रीय गृह मंत्री के अनुमोदन से, द्वारा मामलों की जांच पर बहुत अधिक भरोसा किया था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने आगे कहा कि गृह मंत्रालय की टिप्पणियों से न तो कानूनी मामलों के विभाग, कानून और न्याय मंत्रालय या गृह मंत्रालय द्वारा आरोप पत्र पर कोई विशिष्ट विचार किया गया है। उच्च न्यायालय ने आगे इस तथ्य पर ध्यान दिया कि जाँच समिति द्वारा 13.09.2011 पर आयोजित कुछ अभ्यास किए गए थे और उसके बाद निम्नलिखित रूप में कहा गया थाः

> " 24. ..... जाँच समिति को वैधानिक सृजन नहीं दिखाया गया है।
>
> जाँच समिति का गठन केवल माननीय उपराज्यपाल की सहायता और हाथ बंटाने के लिए किया गया था। वह जाँच समिति की किसी भी सिफारिश से बंधे नहीं थे। इसलिए, जाँच समिति को पुनर्विचार के लिए फिर से बुलाने में विफलता श्री बी. एस. जून द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव को अवैध नहीं कहा जा सकता है। अभियोजन निदेशक श्री बी.एस. जून को भी उस प्रस्ताव को आगे बढ़ाने से नहीं रोका गया जो उन्होंने आरोप-पत्रों का अध्ययन करने के बाद

13.12.2011 को पेश किया था इन मामलों में, केवल इसलिए क्योंकि वह जाँच समिति का हिस्सा थे जिसने पहले 13.09.2011 को अभियोजन से वापसी की सिफारिश की थी।

x x x x x

26. याचिकाकर्ताओं का तर्क है कि इन मामलों में सीआरपीसी की धारा 321 के तहत आवेदन दायर करने के पहले निर्णय अभियोजन निदेशक के सुझाव पर विद्वान लोक अभियोजक द्वारा स्वतंत्र रूप से लिए गए थे, जबकि बल न डालने के निर्णय अभियोजन वापस लेने के लिए जो आवेदन अतिरिक्त लोक अभियोजक पर थोपे गए या मढ़े गए, उनमें कोई दम नहीं है।

x x x x x

30. याचिकाकर्ताओं के लिए यह तर्क देने का कोई आधार नहीं है कि सीआरपीसी की धारा 321 के तहत आवेदन दायर करने का विद्वान सहायक लोक अभियोजक का निर्णय उनके द्वारा स्वतंत्र रूप से लिया गया था, जबकि आगामी निर्णय सीआरपीसी की धारा 321 के तहत आवेदन के बाद लिया गया प्रतिवादी के आदेश के अधीन था। यह भी तर्क दिया जा सकता है कि सीआरपीसी की

धारा 321 के तहत आवेदन स्थानांतरित करने का पूर्व निर्णय सहायक लोक अभियोजक के लिए एक बाध्यकारी निर्देश था, जबकि, बाद में उसे दिया गया निर्देश अपने विवेक/स्वचेतना के अनुसार कार्य करना था और यह तय करना था कि सीआरपीसी की धारा 321 के तहत आवेदनों को दबाया जाए या नहीं।"

41. जैसा कि कहा गया है, विद्वान एकल न्यायाधीश ने देखा है कि आरोपी व्यक्ति जो रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ता थे, उन्होंने पहले ही धारा 321 सीआरपीसी के तहत दिए गए आवेदन को वापस लेने का विरोध किया था। लेकिन फिर भी उन्हें मामले को आगे बढ़ाने और उनके लिए उपलब्ध सभी मुद्दों को उचित कार्यवाही में उठाने का अधिकार था। उपरोक्त निर्णय को पढ़ने पर, यह शीशे की तरह स्पष्ट हो जाता है कि रिट अदालत को सरकार द्वारा आवेदन वापस लेने के लिए दबाव न डालने के दिए गए निर्देशों में कोई गलती नहीं मिली। रिट अदालत ने आवेदन पर दबाव न डालने में लोक अभियोजक की भूमिका के संबंध में कोई राय नहीं दी थी। इसने केवल यह देखा था कि यह विवादित नहीं था कि याचिकाकर्ताओं ने सीआरपीसी की धारा 321 के तहत आवेदन वापस लेने की अनुमति देने वाले विद्वान मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट के आदेश के संबंध में पहले ही उपाय का सहारा ले लिया था।

42. यहां दिए गए विवादित आदेश में, विद्वान एकल न्यायाधीश ने कहा है कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि अभियोजन से वापसी एक कार्यकारी और गैर-न्यायिक कार्य है, लेकिन अदालत के पास व्यापक विवेकाधिकार है, जिसे अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांतों पर न्यायिक रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि, अदालत को इस बात से संतुष्ट होना होगा कि लोक अभियोजक के कार्यकारी कार्य का अनुचित तरीके से प्रयोग नहीं किया गया है या यह अनुचित उद्देश्यों के लिए न्याय के क्रम में हस्तक्षेप करने का प्रयास नहीं है। इन मापदंडों के भीतर ही न्यायिक विवेक का प्रयोग किया जाना है। इसके बाद, उच्च न्यायालय ने श्योनंदन पासवान (सुप्रा) मामले में तीन-न्यायाधीशों की पीठ के फैसले का हवाला दिया और कहा कि यह लोक अभियोजक का कर्तव्य है कि वह अप्रासंगिक या बाहरी निर्देशों से प्रभावित हुए बिना एक स्वतंत्र माध्यम के रूप में अपने विवेक का उपयोग करे। उक्त सिद्धांत को समझते हुए, उच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया है कि लोक अभियोजक ने सीआरपीसी की धारा 321 के तहत आवेदन को अचानक वापस लेने का आवेदन देकर अपनी बाध्य जिम्मेदारी से किनारा कर लिया है कुछ दिनों के बाद, विशेष रूप से जब सीआरपीसी धारा 321 के तहत लोक अभियोजक ने कोई अनिश्चित शर्तें नहीं कही हैं कि पक्षों के बीच एक वाणिज्यिक लेनदेन को आपराधिक रंग देने की मांग की गई थी और इसकी संभावना कम है कि आपराधिक गबन आदि के लिए दायर आरोप पत्र के आधार पर दोषसिद्धि हो।

43. इससे पहले कि हम आवेदन पर जोर न देने के लिए अनुमति देने के लिए मजिस्ट्रेट की शक्ति पर ध्यान दें, हम मानते हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा आरोपी व्यक्तियों द्वारा दायर दस्तावेजों सीआरपीसी धारा 91 के तहत आवेदन के साथ पर विचार किया जाने के बाबत मजिस्ट्रेट को जारी किए गए निर्देश की वैधता पर विचार किया जाना आवश्यक है। धारा 91 सीआरपीसी इस प्रकार है:-

"धारा 91 दस्तावेज़ या अन्य चीज़ प्रस्तुत करने के लिए समन। (1) जब भी कोई न्यायालय या किसी पुलिस थाने का प्रभारी अधिकारी यह समझता है कि इस संहिता के तहत किसी भी जांच, पूछताछ, मुकदमे या अन्य कार्यवाही के उद्देश्यों के लिए किसी भी दस्तावेज या अन्य चीज़ को पेश करना आवश्यक या वांछनीय है ऐसे न्यायालय या अधिकारी द्वारा या उसके समक्ष इस संहिता के तहत मुकदमे या अन्य कार्यवाही के लिए, ऐसा न्यायालय या अधिकारी उस व्यक्ति को एक समन , या ऐसा अधिकारी एक लिखित आदेश जारी कर सकता है, जिसके कब्जे या शक्ति में ऐसा दस्तावेज़ या चीज़ होने का विश्वास है, जिससे उसे इसकी आवश्यकता होगी। सम्मन या आदेश में बताए गए समय और स्थान पर उपस्थित हों और इसे पेश करें, या इसे पेश करें।

(2) इस धारा के तहत किसी भी व्यक्ति को केवल एक दस्तावेज या अन्य चीज का उपलब्ध करने की आवश्यकता होती है, तो यह माना जाएगा कि

उसने मांग का अनुपालन किया है यदि वह व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने के बजाय ऐसे दस्तावेज या चीज का उपलब्ध करवाता है।

(3) इस धारा में कुछ भी नहीं माना जाएगा।

(ए) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) की धारा 123 और 124 या बैंकर पुस्तक साक्ष्य अधिनियम, 1891 (13) को प्रभावित करने के लिए।

(बी) डाक या तार की अभिरक्षा में किसी पत्र, पोस्टकार्ड, तार या अन्य दस्तावेज़ या किसी पार्सल या चीज़ पर आवेदन करना।"

44. उक्त प्रावधान के दायरे और परिधि पर उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पाधी (2005) 1 एससीसी 568, में विचार किया गया था जिसमें इस न्यायालय ने ठहराया :

> "धारा की पहली और सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता दस्तावेज़ के आवश्यक या वांछनीय होने के बारे में है। आवश्यकता या वांछनीयता को उस चरण के संदर्भ में देखना होगा जब पेश करने के लिए प्रार्थना की जाती है। यदि कोई दस्तावेज़ आवश्यक या वांछनीय है अभियुक्त के बचाव में, आरोप तय करने के प्रारंभिक चरण में धारा 91 को लागू करने का सवाल ही नहीं उठता क्योंकि उस चरण में अभियुक्त का बचाव प्रासंगिक नहीं है। जब धारा जांच, पूछताछ, परीक्षण या अन्य कार्यवाही को संदर्भित करती है, यह ध्यान में रखा

जाना चाहिए कि धारा के तहत एक पुलिस अधिकारी किसी दस्तावेज़ को मंगाने और प्रस्तुत करने के लिए अदालत में जा सकता है, जैसा कि धारा में उल्लेखित किसी भी चरण में आवश्यक हो सकता है। जहां तक आरोपी का संबंध है, उसका धारा 91 के तहत आदेश की मांग का अधिकार आमतौर पर बचाव के चरण तक नहीं आएगा। जब धारा दस्तावेज़ के आवश्यक और वांछनीय होने की बात करती है, तो यह अंतर्निहित है कि उस चरण पर विचार करते हुए आवश्यकता और वांछनीयता की जांच की जानी चाहिए जब सम्मन और पेश करने के लिए ऐसी प्रार्थना की जाती है और इसे करने वाला पक्ष, पुलिस है या आरोपी। यदि धारा 227 के तहत, आवश्यक और प्रासंगिक केवल संहिता की धारा 173 के संदर्भ में प्रस्तुत रिकॉर्ड है, तो आरोपी उस स्तर पर अपनी बेगुनाही दिखाने के लिए किसी भी दस्तावेज़ को प्रस्तुत करने की मांग करने के लिए धारा 91 का उपयोग नहीं कर सकता है। धारा 91 के तहत दस्तावेज़ पेश करने के लिए अदालत द्वारा समन जारी किया जा सकता है और एक लिखित आदेश के तहत पुलिस थाने का प्रभारी अधिकारी भी दस्तावेज़ पेश करने का निर्देश दे सकता है। धारा 91 अभियुक्त को अपने बचाव को साबित करने के लिए अपने पास मौजूद दस्तावेज़ पेश करने का कोई

अधिकार नहीं देती है। धारा 91 मानती है कि जब दस्तावेज़ प्रस्तुत नहीं किया जाता है तो उसे प्रस्तुत करने के लिए बाध्य करने की प्रक्रिया शुरू की जा सकती है। (2005) 1 एससीसी 568] कानून की उपरोक्त व्याख्या सीआरपीसी की धारा 91 के दायरे के बारे में स्पष्ट रूप से बताती है और हम इससे सम्मानपूर्वक सहमत हैं।"

45. वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय द्वारा विद्वान मजिस्ट्रेट को सहायक लोक अभियोजक द्वारा दायर आवेदन पर विचार करने का निर्देश दिया गया था, जिसमें धारा 321 सीआरपीसी के तहत पहले दिए गए आवेदन को वापस लेने की मांग की गई थी। ऐसी स्थिति में, यह समझना मुश्किल है कि सीआरपीसी की धारा 91 में आरोपी व्यक्तियों द्वारा सहायता कैसे ली जा सकती है। इसे ध्यान में रखते हुए, हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि उच्च न्यायालय ने आरोपी व्यक्तियों को धारा 91 सीआरपीसी के तहत आवेदन दायर करने की अनुमति देकर गलती की है।

46. ऐसा कहने के बाद, हमें यह बात करनी होगी कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा धारा 321 सीआरपीसी के तहत दायर पूर्ववर्ती आवेदन को वापस लेने की मांग करने वाले आवेदन पर पुनर्विचार के मामले को विद्वान मजिस्ट्रेट को भेजना उचित था। ये कहने की आवश्यकता नहीं है, यदि उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द कर दिया जाता है, तो विद्वान मजिस्ट्रेट के परिणामी आदेश को विलुप्त होने का मार्ग प्रशस्त करना

होगा। उच्च न्यायालय ने पहले भी रिट याचिका (सी) संख्या 3470/2012 और संबंधित मामलों का निपटारा करते हुए स्पष्ट रूप से राय दी थी कि उपराज्यपाल द्वारा आवेदन वापस लेने का निर्देश उचित था। उस आदेश को चुनौती देने वाली विशेष अनुमति याचिकाएं खारिज होने के बाद उक्त आदेश को अंतिम रूप मिल गया था। उच्च न्यायालय ने पहले के अवसर पर कहा था कि आरोपी व्यक्तियों को मामले को आगे बढ़ाने और उनके लिए उचित कार्यवाही में उपलब्ध सभी मुद्दों को उठाने का अधिकार है। विवादित आदेश के अनुसार, विद्वान एकल न्यायाधीश ने कुछ अधिकारियों पर भरोसा करते हुए यह माना है कि निश्चित रूप से यह लोक अभियोजक है जिसे निर्णय लेना है, न कि सरकार या उपराज्यपाल को और इसलिए सीआरपीसी की धारा 321 के तहत आवेदन वापस लेने को उपराज्यपाल की सहमति के खिलाफ रिट याचिका खारिज़ किए जाने पर नीचे की अदालतों पर गलत तरीके से भरोसा किया गया था, खासकर जब रिट याचिका पर फैसला करते समय आपराधिक अदालतों के समक्ष उपचार को पाने का अधिकार संरक्षित किया गया था।

47. हमें रिट न्यायालय द्वारा अभियुक्त व्यक्ति को दी गई स्वतंत्रता के विस्तार का विज्ञापन करने की आवश्यकता नहीं है। मामले का मूल यह है कि क्या विवादित आदेश पारित करने में विद्वान एकल न्यायाधीश का दृष्टिकोण कानूनी रूप से सही है। इस प्रस्ताव पर कोई संदेह नहीं हो सकता है कि जब लोक अभियोजक द्वारा धारा 321

सीआरपीसी के तहत अभियोजन पक्ष से वापस लेने का आवेदन दायर किया जाता है, तो उसकी एकमात्र जिम्मेदारी होती है और कानून यह दायित्व डालता है कि उसे कुछ कानूनी मानकों को ध्यान में रखते हुए रिकॉर्ड पर तत्वों के आधार पर संतुष्ट किया जाना चाहिए। लोक अभियोजक ने संतुष्ट होने के बाद, जैसा कि आवेदन से पता चलता है, आवेदन दायर किया था। उक्त आवेदन को सुनवाई के लिए नहीं लिया गया। विद्वान् मजिस्ट्रेट ने वापसी के लिए सहमति देने वाला कोई आदेश पारित नहीं किया था, क्योंकि वह सहायक लोक अभियोजक को सुने बिना ऐसा नहीं कर सकता था। इस मोड़ पर, प्राधिकरण ने इस तथ्य स्थिति को ध्यान में रखते हुए निर्णय लिया कि सहायक लोक अभियोजक को आवेदन वापस लेना चाहिए और उस पर दबाव नहीं डालना चाहिए। इस फैसले के बाद, जैसा कि आवेदन से पता चलता है, सहायक लोक अभियोजक ने तथ्यों की फिर से सराहना की है, तथ्यों की समग्रता पर अपना विवेक लगाया है और धारा 321 सीआरपीसी के तहत पहले दिए गए आवेदन को न दबाने के लिए आवेदन किया। आवेदन को न दबाने के लिए आवेदन दाखिल करने की तुलना अदालत से पारित किसी आदेश की किसी भी प्रकार की समीक्षा से नहीं की जा सकती है। जब अदालत द्वारा आदेश पारित किया जाता है तो समीक्षा का सवाल उठ सकता है। धारा 362 सीआरपीसी किसी लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को सुधारने के अलावा किसी मामले के निपटारे के निर्णय या अंतिम आदेश पर हस्ताक्षर करने पर न्यायालय को बदलने या समीक्षा करने से रोकती है। उक्त प्रावधान दूर

से आकर्षित नहीं किया जा सकता है। अभियोजन पक्ष से वापस लेने की मांग के लिए आवेदन दायर करना और पहले दायर आवेदन को न दबाने के लिए आवेदन करना दोनों लोक अभियोजक के अधिकार क्षेत्र में हैं। उसे संतुष्ट होना चाहिए। उन्हें निश्चित रूप से स्वतंत्र रूप से कार्य करना होगा और जैसा कि संविधान पीठ ने शिवानंदन पासवान (ऊपर) में कहा है, क्योंकि वे डाकघर नहीं हैं। वर्तमान मामले में, जैसा कि तथ्यों से पता चलता है, लोक अभियोजक ने धारा 321 सीआरपीसी के तहत आवेदन बढ़ाया नहीं किया था लेकिन केवल दाखिल किया गया। वह अदालत के समक्ष मौखिक रूप से प्रार्थना कर सकता था कि वह आवेदन को दबाने का इरादा नहीं रखता था। हम यह सोचने के लिए इच्छुक हैं कि अदालत उन्हें सहमति प्राप्त करने के लिए मदद करने के लिए मजबूर नहीं कर सकती थी। अदालत की भूमिका तब होती है जब लोक अभियोजक अभियोजन से पीछे हटने के लिए सहमति मांगने के लिए आवेदन करता है। उस स्तर पर, अदालत को यह देखने की आवश्यकता होती है कि क्या लोक अभियोजक द्वारा विवेक का स्वतंत्र अनुप्रयोग किया गया है और क्या अन्य तत्व हैं सहमति देने के लिए संतोषजनक हैं। लोक अभियोजक द्वारा आवेदन दायर किए जाने से पहले, अदालत की कोई भूमिका नहीं होती है। यदि लोक अभियोजक आवेदन को वापस लेने या न लेने का इरादा रखता है, तो वह ऐसा करने का हकदार है। अदालत यह नहीं कह सकती कि लोक अभियोजक के पास पहले की याचिका पर जोर नहीं देने के लिए आवेदन दायर करने का कोई कानूनी अधिकार नहीं है। यह कहने पर

विशेष जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि अभियुक्त व्यक्तियों को इस तरह के आवेदन को चुनौती देने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। हम यह समझने में विफल हैं कि अभियुक्त व्यक्ति आवेदन को कैसे चुनौती दे सकते हैं और दस्तावेज़ भी दाखिल कर सकते हैं और धारा 91 सीआरपीसी का सहारा ले सकते हैं। अभियुक्त व्यक्तियों को दी गई स्वतंत्रता दंड प्रक्रिया संहिता के अनुरूप नहीं है। अगर ऐसी स्थिति में कोई व्यथित है, यह पीड़ित है, क्योंकि आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ उसकी प्राथमिकी पर दर्ज मामले को वापस लेने की मांग की गई है। अभियुक्त व्यक्तियों की कोई भूमिका नहीं है और इसलिए, उच्च न्यायालय अभियोजन पक्ष को आवेदन वापस लेने और अभियुक्त व्यक्तियों को ऐसी स्वतंत्रता देने की अनुमति देने वाले आदेशों को रद्द नहीं कर सकता था। सिद्धांत में कहा गया है कि लोक अभियोजक को अपने विवेक को लागू करना चाहिए और धारा 321 सीआरपीसी के तहत आवेदन दायर करने के बारे में एक स्वतंत्र निर्णय लेना चाहिए इसमें गलती नहीं की जा सकती है, लेकिन उक्त सिद्धांत को यह कहने के लिए बढ़ाया जा सकता है कि उसे अदालत को यह समझाना है कि उसका पहले के आवेदन को न दबाने के लिए आवेदन करना उचित नहीं होगा।

हम ऐसा सोचने के लिए तैयार हैं क्योंकि विद्वान मजिस्ट्रेट ने पहले के आवेदन पर विचार नहीं किया था। इसलिए, विवादित आदेश उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 30.07.2015 को दरकिनार कर दिया गया

है। जैसा कि विवादित आदेश को दरकिनार कर दिया गया है, परिणामस्वरूप विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा 22.09.2015 पर पारित आदेश को विलुप्त होने का मार्ग प्रशस्त करना है और हम ऐसा निर्देश देते हैं। विद्वान मजिस्ट्रेट को कानून के अनुसार मामलों को आगे बढ़ाने का निर्देश दिया जाता है। हम यह कहने में जल्दबाजी कर सकते हैं कि हमने मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त नहीं की है। हमारे सभी अवलोकनों और निष्कर्षों को उठाए गए विवाद के निर्णय के उद्देश्य तक सीमित रखा जाना चाहिए।

48. मामले से अलग होने से पहले, हमने शुरुआत में जो कहा है उसे दोहराते हैं और उत्तरदाताओं की अथक भावना के बारे में भी बताते हैं। उस संदर्भ में, सुब्रत रॉय सहारा बनाम भारत संघ और अन्य (2014) 8 एस. सी. सी 470 का एक अंश, प्रासंगिक होने के कारण, नीचे दिया गया है: -

> "भारतीय न्यायिक प्रणाली पूरी तरह से निरर्थक मुकदमेबाजी से पीड़ित है। वादकारियों को निरर्थक और गैर-विचारणीय दावों के प्रति उनके बाध्यकारी जुनून से रोकने के लिए तरीके और साधन विकसित करने की आवश्यकता है। किसी को यह ध्यान में रखना होगा कि मुकदमेबाजी की प्रक्रिया में, एक बात होती है हर गैर-जिम्मेदार और संवेदनहीन दावे के दूसरी तरफ निर्दोष पीड़ित है। वह लंबे समय तक

घबराहट और बेचैनी की चिंताजनक स्थिति से पीड़ित रहता है, जबकि मुकदमा उसकी ओर से बिना किसी गलती के लंबित है..."

हमने उपरोक्त अंश उद्धृत किया है क्योंकि हम सम्मानपूर्वक उक्त चिंता को साझा करते हैं, और तत्काल मामले के तथ्यात्मक खुलासे को ध्यान में रखते हुए दोहराते हैं।

49. उपरोक्त शर्तों में अपीलें स्वीकार की जाती हैं।

अपीलों को अनुमति।

यह अनुवाद आर्टिफ़िश्यल इंटेलिजेंस टूल "सुवास" की सहायता से अनुवादक अधिवक्ता चित्रा भदौरिया द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण- इस निर्णय का अनुवाद स्थानीय भाषा में किया जा रहा है, एवं इसका प्रयोग केवल पक्षकार इसको समझने के लिए उनकी भाषा में कर सकेंगे एवं यह किसी अन्य प्रयोजन में काम नहीं ली जायेगी। सभी आधिकारिक एवं व्यवहारिक उद्देश्यों के लिए उक्त निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही विश्वसनीय माना जायेगा एवं निष्पादन एवं क्रियान्वयन में भी उसी को उपयोग में लिया जायेगा।